जैनधर्म की वैज्ञानिकता और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के सन्दर्भ

—आचार्य डा० राजकुमार जैन, एम० ए० एच० पी० ए०

चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से आज भारत में मुख्य रूप से एलोपैथी और आयुर्वेद ये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। आयुर्वेद मूलतः भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की एक कड़ी है और आदिकाल से भारत में मनुष्यों के जीवन के साथ मिलकर चल रही है। इसके विपरीत एलोपथी पाश्चात्य जगत की देन है जो अंग्रेजों के समय में भारत में भारतवासियों पर थोपी गई थी। इसका उद्भवकाल १८वीं शताब्दी माना जाता है। इससे पूर्व इसके इतिहास की कोई झलक नहीं मिलती। इस प्रकार ये दोनों पद्धतियाँ आज भारत में जनता की सेवा करते हुए मानव समाज का उपकार कर रही हैं। चिकित्सा की दृष्टि से प्राचीन काल की अपेक्षा आज भारत में बिल्कुल ही विपरीत स्थिति हो गई है। विगत दिनों प्राप्त सरकारी आँकड़ों से विदित होता है कि आज भी देश की ८० प्रतिशत जनता देहाती क्षेत्र में और शेष २० प्रतिशत जनता शहरी क्षेत्र में रहती है। सामान्य चिकित्सा और चिकित्सा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण साधनों की उपलब्धि का जहाँ तक प्रश्न है उसके अनुसार सम्पूर्ण चिकित्सा सुविधा का ८० प्रतिशत शहरी क्षेत्र में और शेष २० प्रतिशत का ग्रामीण क्षेत्र में विकास है। इस प्रकार शहरों की केवल २० प्रतिशत जनता को ८० प्रतिशत चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है और ग्रामीण क्षेत्र की जनता, जो देश का ८० प्रतिशत भाग है, को केवल २० प्रतिशत चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है। इसके जो भी कारण हों उनकी गहराई में न जाकर मैं केवल जैन-दर्शन की दृष्टि से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ तथ्यपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित अपने विचारों को अभिव्यक्त करना चाहता हूँ।

जैन-दर्शन और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में सैद्धान्तिक, प्रायोगिक या वैचारिक दृष्टि से यद्यपि कोई विशेष समानता प्रतीत नहीं होती और न ही दोनों के दार्शनिक पक्ष में कोई अनुपूरकता की स्थिति है, तथापि इस दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है कि मानव समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की वर्तमान उपलब्धियों से लाभान्वित हो रहा है। जिस शरीर के माध्यम से जैन-दर्शन आत्म-साधन और आत्मानुशीलन हेतु मनुष्य को प्रेरित करता है उस शरीर को रोगमुक्त बनाकर उसे स्वस्थ रखने में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का वर्तमान समय में अपूर्व योगदान रहा है। आत्मा के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं है और शरीर के सहयोग के बिना आत्मा की मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से दोनों एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। जैन-दर्शन यदि आत्मा को विशुद्ध स्वरूप प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त करता है तो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानव शरीर को स्वास्थ्य रूपी विशुद्धता प्रदान करने में समर्थ है। इस दृष्टि से जैन-दर्शन और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान दोनों को अप्रत्यक्ष रूप से परस्पर सम्बन्धित माना जा सकता है, किन्तु दोनों का सम्बन्ध ३ और ६ की भाँति ३६ के समान परस्पर विपरीत भावात्मक होगा। क्योंकि जैन-दर्शन आध्यात्मिकता का पोषक है जबकि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भौतिकता का। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा वर्तमान युग में मानव समाज का उपकार किस रूप में किस प्रकार किया जा रहा है ? इस पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। तत्पश्चात् उस पृष्ठभूमि के आधार पर जैनदर्शन के साथ उसका सम्बन्ध निरूपित किया जायगा।

वर्तमान वैज्ञानिक, भौतिकवादी एवं प्रगतिशील युग में मानव की समस्त प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी अधिक हैं। इसी प्रकार मानव की समस्त प्रवृत्तियों का आकर्षण केन्द्र वर्तमान में जितना अधिक भौतिकवाद है उतना आध्यात्मवाद नहीं है। यही कारण है कि आज का मानव भौतिक नश्वर सुखों में ही यथार्थ सुख की अनुभूति करता है, जिसका अन्तिम परिणाम विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वर्तमानकालीन सतत चिन्तन, अनुभूति की गहराई, अनुशीलन की परम्परा और तीव्रगामी विचार-प्रवाह सब मिलकर भौतिकवाद के विशाल समुद्र में इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलीन हो गए हैं कि जिससे अन्तर्जगत की समस्त प्रवृत्तियाँ ही अवरुद्ध हो गई हैं। इसका एक यह परिणाम अवश्य हुआ है कि वर्तमान मानव समाज को अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हुई हैं, जिससे सम्पूर्ण विश्व में एक अभूतपूर्व क्रान्ति का उद्‌भव हुआ है। यह क्रान्ति आज वैज्ञानिक क्रान्ति के नाम से कही जाती है और इससे होने वाली उपलब्धियाँ वैज्ञानिक उपलब्धियाँ कहलाती हैं। आधुनिक विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में ये वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हुई हैं और हो रही हैं। उन्हीं उपलब्धियों में से एक है आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की उपलब्धि। इसे एलोपैथी या आधुनिक चिकित्सा प्रणाली (Modern Medical Science) भी कहा जाता है।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की समस्त उपलब्धियाँ भौतिकवाद की देन हैं और उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ भौतिकता की ओर ही उन्मुख हैं। इसी सिद्धान्त पर आधारित आधुनिक चिकित्सा प्रणाली भी भौतिकता से प्रेरित और भौतिकवाद की ओर अभिमुख है। मेरे उपर्युक्त कथन की पुष्टि निम्न कारणों पर आधारित है।

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली का मुख्य लक्ष्य केवल शरीर के रोगों की चिकित्सा कर उनका उपशम करना है, ताकि रोगों से मुक्त होकर शरीर भौतिक सुखों का उपभोग कर सके। रोग की चिकित्सा के द्वारा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान शारीरिक स्वस्थता तो प्रदान करता है किन्तु शारीरिक आभ्यन्तरिक शुद्धि तथा मानसिक स्वस्थता के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है। इसका कारण संभवतः मुख्य रूप से यह हो सकता है कि मन का प्रत्यक्ष न होने से अथवा मन की स्थिति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का भिन्न दृष्टिकोण होने से उन्होंने इस विषय में दूसरे ढंग से विचार किया है। अभिप्राय यह है कि आधुनिक विज्ञान मूलतः प्रत्यक्षवादी होने के कारण उसने इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध किए जाने वाले विषयों के अनुसन्धान में ही अपने समस्त साधनों को केन्द्रित किया है। आधुनिक विज्ञान के समस्त साधन भौतिक होने के कारण वे केवल भौतिक वस्तुओं के अनुसन्धान में ही समर्थ हैं; अन्य विषयों के अनुसन्धान में नहीं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के समस्त साधन चाहे वे परीक्षण के लिए प्रयुक्त किए जाते हों अथवा चिकित्सा के लिए, पूर्णतः भौतिक हैं। वे साधन केवल वहीं तक सक्षम हैं जहाँ तक उन्हें विषय का प्रत्यक्ष है, उससे आगे या उसके अतिरिक्त उनकी गति नहीं है। इसी प्रकार वर्तमान बीसवीं शताब्दी में आधुनिक विज्ञान ने महत्त्वपूर्ण साधनों का आविष्कार कर उनके द्वारा रोग निदान के सम्बन्ध में गूढ़तम विषयों की जानकारी प्राप्त करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। चिकित्सा विषयक अनेक उपकरणों द्वारा कष्टसाध्य व्याधियों को निर्मूल करने तथा रोग समूह पर विजय प्राप्त करने में अद्वितीय सफलता अर्जित की है। तथापि उसकी सम्पूर्ण सफलता और श्रेय एक ऐसी परिधि में सीमित है जो केवल इहलौकिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ है।

चिकित्सा का सामान्य अभिप्राय होता है रोगापनयन। चिकित्सा द्वारा रोग का निवारण होने पर शरीर स्वस्थ होता है और शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ मनुष्य समस्त भोगोपभोग योग्य विषयों का आनन्द प्राप्त करता है। चिकित्सा विधि सामान्यतः दो प्रकार की होती है—एक मुख द्वारा औषधि सेवन अर्थात् आभ्यन्तरिक प्रयोग और दूसरी बाह्य क्रिया विधि अर्थात् विविध उपकरणों या साधनों द्वारा शल्य क्रिया करके अवयव विशेषगत विकृति को दूर करना। ये दोनों ही विधियाँ रोग का शमन या व्याधि को निर्मूल करने में समर्थ हैं। किन्तु इनके द्वारा मानसिक शुद्धि या मानसिक विकारोपशमन किसी भी प्रकार संभव नहीं है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा यद्यपि मानसिक विकृति और उसकी चिकित्सा के सम्बन्ध में भी पृथक् से अनुशीलन चिन्तन और मनन हुआ है किन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण उसने जिस वस्तु को मन की संज्ञा दी है वह भारतीय दर्शनशास्त्र एवं जैन-दर्शन में प्रतिपादित मन से सर्वथा भिन्न वस्तु है। अतः आधुनिक चिकित्सा विज्ञान सम्मत मानसशास्त्र और जैन-दर्शन में प्रतिपादित मानसशास्त्र में मौलिक अन्तर होने से जैनदर्शन उसे मानसिक चिकित्सा विज्ञान स्वीकार नहीं कर सकता।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भौतिकवाद से प्रेरित होने के कारण उसका अपना कोई स्वतन्त्र मौलिक दर्शन नहीं है। यही कारण है कि दार्शनिक क्षेत्र में उसकी गतिविधि का कोई समुचित मूल्यांकन नहीं किया गया। आधुनिक विद्वानों के अनुसार यह तर्क प्रस्तुत किया जाता रहा है कि पाश्चात्य-दर्शन की चिन्तनधारा का पर्याप्त प्रभाव आधुनिक चिकित्सा विज्ञान पर पड़ा है और उसने उसी परिप्रेक्ष्य में अपने सिद्धान्तों का निर्धारण कर एक नवीन दिशा की ओर अपने कदम बढ़ाए जो अब भी नित नवीन अन्वेषणों के साथ सतत रूप से आगे बढ़ते जा रहे हैं और अपनी नूतन उपलब्धियों के माध्यम से लोक-कल्याण में संलग्न हैं। वस्तुतः यह तथ्यपूर्ण है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का स्वतन्त्र मौलिक दर्शन न होते हुए भी वह पाश्चात्य दर्शन से न केवल प्रभावित है अपितु अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणित है। इसका कारण संभवतः यही है कि दोनों का उद्भव स्थल एक ही है और दोनों में विचार साम्य की स्थिति है। इस आधार पर अथवा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का अनुशीलन करने पर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वह मनुष्य को शारीरिक दृष्टि से अधिक महत्त्व देता है, मानसिक दृष्टि से कम और आत्मा या आध्यात्मिक दृष्टि से तो बिल्कुल नहीं। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य का महत्त्व यद्यपि अस्थायी है और शरीर का विनाश हो जाने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। किन्तु यावत् काल शरीर विद्यमान रहता है तब तक वही महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त शरीर के जीवन के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि शरीर में कुछ विशिष्ट द्रव्यों का संयोग ही शरीर को जीवित रखकर उसे जीवन प्रदान करता है और उन विशिष्ट द्रव्यों का विघटन शारीरिक जीवन के अन्त का कारण है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इस प्रकार के अनुसन्धान में सफल नहीं हुए हैं कि शरीर को जीवन शक्ति प्रदान करने वाले वे विशिष्ट घटक या द्रव्य कौन-कौन से हैं। उनका दावा है कि एक न एक दिन वे उसे खोज निकालने में समर्थ होंगे और इस प्रकार वे मानव मृत्यु पर सदा सर्वदा के लिए विजय प्राप्त कर सकेंगे। विज्ञान द्वारा प्रतिपादित भौतिक अनुसन्धान संभवतः युग-युगों तक प्रयत्नशील रहेगा और असफलता की एक-एक सीढ़ी पार करता हुआ इस दिशा में आगे बढ़ता रहेगा। असफलता की चरम परिणति संभवतः उसके समूल विनाश में हो क्योंकि नश्वरता की गोद में पले हुए भौतिकवाद की चरम परिणति उसके विनाश में ही होती है, यह सृष्टि का अटल नियम है।

जैन-दर्शन का महत्व आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से है। चिकित्सा की दृष्टि से उसका कोई महत्व नहीं है और न ही जैन-दर्शन में चिकित्सा के कोई निर्देशक सिद्धान्त निरूपित हैं। किन्तु चिकित्सा का सम्बन्ध मानव स्वास्थ्य से है और स्वास्थ्य की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्त जैन-दर्शन द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। स्वास्थ्योपयोगी जैन-दर्शन के वे सिद्धान्त भले ही स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णित न किए गए हों, किन्तु मानव मात्र के लिए मानव शरीर की दोषों से रक्षा के निमित्त आध्यात्मिक शुद्धि हेतु प्रतिपादित वे नियम निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं। आध्यात्मिक शुद्धि एवं आत्मकल्याण की भावना से अभिभूत मनुष्य के लिए भले ही उसके शरीर और उसके शारीरिक स्वास्थ्य का कोई महत्व न हो किन्तु एक गृहस्थ एवं श्रावक को तो शरीर की रक्षा का उपाय करना ही पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार अन्यान्य दोषों से आत्मा की रक्षा करना उसका परम कर्तव्य है उसी प्रकार रोगों से शरीर की रक्षा करना भी उसका परम कर्तव्य है। शरीर की रक्षा के बिना अथवा स्वस्थ शरीर के बिना धर्म साधन सम्भव नहीं है। धर्म का अभिप्राय मानव जीवन की निष्क्रियता भी नहीं है कि धर्म के नाम पर मनुष्य स्वयं को समस्त लौकिक कर्मों से विरत कर ले। अपितु नैतिक आचरण की शुद्धता एवं संयम पूर्ण जीवन ही वास्तविक धर्म है। जीवन की उपयोगिता शरीर के बिना नहीं है, अतः व्यावहारिक जीवन में शरीर की रक्षा करना तथा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य रक्षण हेतु सदैव सजग रहना मानव मात्र का परम कर्तव्य है। चारों ही पुरुषार्थ की सिद्धि शरीर के ही माध्यम से होती है और शरीर का स्वास्थ्य ही इनका मूल आधार है। आचार्यों के शब्दों में—

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।"

यह महत्वपूर्ण तथ्य जो आचार्यों की गहन दृष्टि का परिणाम है लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से उपयोगी एवं सार्थक है। अतः अपने शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा हेतु सतत प्रयत्नशील रहना हमारा नैतिक उत्तरदायित्व हो जाता है। शरीर के प्रति मोह नहीं रहना आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, किन्तु इसका यह भी अभिप्राय नहीं है कि शरीर की पूर्ण उपेक्षा की जाय। जान-बूझकर शरीर की उपेक्षा करना एक प्रकार का आत्मघात है और आत्मघात को शास्त्रों में सबसे बड़ा दोष माना गया है। अतः धर्म साधन हेतु आहार आदि के द्वारा शरीर का साधन करना तथा अहितकारी विषयों से उसकी रक्षा कर विकार एवं रोगों से उसे बचाना आवश्यक है। एकान्ततः शरीर की उपेक्षा करने का उल्लेख किसी शास्त्र में नहीं है। जैनधर्म में भी आत्म-साधना के समक्ष शरीर को यद्यपि नगण्य माना गया है किन्तु पूर्णतः उसकी उपेक्षा का निर्देश नहीं दिया गया। अतः यावत् काल शरीर की आयु है तावत् काल उसे स्वस्थ रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ पर यह ध्यान योग्य है कि शरीर को स्वस्थ रखना और उसे रोगों से बचाना एक भिन्न बात है और शरीर से मोह रखते हुए उसके माध्यम से भौतिक सुखों का उपभोग करना एक भिन्न बात है। जैनधर्म शरीर को भौतिक सुखों से विरत रखने का निर्देश तो देता है किन्तु स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी सात्विक उपायों के सेवन का निषेध नहीं करता।

मानव शरीर के स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से तथा अहित विषयों में शरीर की प्रवृत्ति को रोकने के लिए जैनधर्म ने मनुष्य के दैनिक आचरण तथा उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धान्तों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रतिपादन किया है जो शारीरिक व मानसिक दृष्टि से तो उपयोगी हैं ही, आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक विकास एवं सात्त्विक जीवन निर्वाह के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जैनधर्म में प्रतिपादित सिद्धान्त जहाँ मनुष्य के आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त करते हैं वहाँ लौकिक किंवा व्यावहारिक जीवन के उत्थान में भी सहायक होते हैं। सात्त्विक जीवन निर्वाह हेतु मनुष्य को प्रेरित करना उनका मुख्य लक्ष्य है। अतः स्वास्थ्य रक्षा एवं आरोग्य की दृष्टि से जैनधर्म आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अत्यन्त निकट है। क्योंकि जीवन की कसौटी पर कसे हुए सिद्धान्त विज्ञान की तुला में जब समानता प्राप्त कर लेते हैं तो जीवनोपयोगी उन सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो जाता है। अतः मानव जीवन की सार्थकता का निर्वाह करने वाले, मन-वचन-काय में शुद्धता उत्पन्न करने वाले, सात्त्विक एवं मानवोचित विशुद्ध भावों का उद्भव करने वाले नियम और सिद्धान्त जब प्रकृति के साँचे में ढल जाते हैं तो स्वतः ही वैज्ञानिकता कि परिधि में आ जाते हैं। उनकी पूर्णता ही उनकी वैज्ञानिकता है।

प्रकृति और विकार के सन्दर्भ में कहा जाता है कि प्राणि-संसार में मृत्यु ही प्रकृति है और जीवन विकार है। इस कथन की सार्थकता वस्तुतः आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक है। लौकिक दृष्टि से विकार (जीवन) की प्रकृति आरोग्य है और आरोग्य का आधार शरीर है। शरीर का विनाश अवश्यंभावी है। अतः उसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है। निष्कर्षरूपेण दृष्टि की भिन्नता होते हुए भी लक्ष्य केवल एक ही रहता है। इसी प्रकार स्वास्थ्य साधन, शरीर रक्षा एवं आरोग्य लाभ के समन्वित लक्ष्य हेतु जैनधर्म एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की पारस्परिक दूरी होते हुए भी आंशिक रूपेण ही सही, बहुत कुछ निकटता एवं पारस्परिक एकता अवश्य है।

व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त किए जाने वाले सामान्य नियम कितने उपयोगी और स्वास्थ्य के लिए हितकारी होते हैं यह उनके आचरित करने के बाद भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। एक जैन गृहस्थ के यहाँ साधारणतः इसका तो ध्यान रखा ही जाता है कि वह जल का उपयोग छानकर करे, सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करे, यथासम्भव कन्दमूल वस्तुओं (लहसुन, पलाण्डु, आलू, अरबी आदि) का प्रयोग न करे, मद्यपान, धूम्रपान आदि व्यसनों का सेवन न करे, जो वस्तुएँ दूषित या मलिन हों और जिनमें जन्तु आदि उत्पन्न हो गए हों उनका सेवन न करे इत्यादि। धार्मिक दृष्टि से विरोध की भावना से प्रेरित अथवा स्वयं को अत्यधिक आधुनिक प्रगतिशील कहने वाले व्यक्ति भले ही जैनधर्म के उपर्युक्त नियमों को रूढ़िवादी, धर्मान्धतापूर्ण, थोथे एवं निरुपयोगी कहें, किन्तु स्वास्थ्य के लिए उनकी उपयोगिता को वैज्ञानिक आधार पर अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। जो नियम जीवन को सात्त्विकता की ओर ले जाकर जीवन ऊँचा उठाने वाले हों, शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य का सम्पादन करने वाले हों, वे नियम केवल इसी आधार पर अवहेलना किए जाने योग्य नहीं हैं कि धार्मिक या सात्त्विक दृष्टि से भी उनका महत्व है। स्वास्थ्य विज्ञान का ऐसा कौन-सा ग्रन्थ है अथवा संसार की प्रचलित चिकित्सा प्रणालियों में ऐसी कौनसी प्रणाली है जो शुद्ध जल के सेवन का निषेध करती है? मद्यपान या धूम्रपान के सेवन का उल्लेख किस चिकित्सा शास्त्र में किया गया है? अशुद्ध और अशुचि भोजन का निषेध कहाँ नहीं किया गया? इस प्रकार उपर्युक्त समस्त नियम एवं सिद्धान्त तथा इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्त भी केवल सैद्धान्तिक या शास्त्रीय नहीं हैं, अपितु पूर्णतः व्यावहारिक एवं नित्योपयोगी हैं।

आधुनिक विज्ञान के प्रत्यक्ष परीक्षणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जल में असंख्य सूक्ष्म जीव एवं अनेक अशुद्धियाँ होती हैं। अतः जल को शुद्ध करने के पश्चात् ही उसका उपयोग करना चाहिए। जल की कुछ भौतिक अशुद्धियाँ तो वस्त्र से छानने के बाद दूर हो जाती हैं। कुछ जीव भी इस प्रक्रिया द्वारा जल से पृथक् किए जा सकते हैं अतः काफी अंशों में जल की अशुद्धि छानने मात्र से दूर हो जाती है और कुछ समय के लिए जल शुद्ध हो जाता है। किन्तु जल की शुद्धि वस्तुतः जल को उबालने से होती है। छने हुए जल को अग्नि पर उबालने से जलगत सभी प्रकार की अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और जल पूर्ण शुद्ध होकर निर्मल बन जाता है। जैनधर्म मानव शरीर को जल सम्बन्धी समस्त दोषों से बचाने और शरीर को नीरोग रखने की दृष्टि से शुद्ध, ताजे, छने हुए और यथासम्भव उबाल कर ठण्डा किए हुए जल के सेवन का निर्देश देता है। क्या इस निर्देश और नियम की व्यावहारिकता अथवा उपयोगिता को अस्वीकार किया जा सकता है?

गृहस्थ के व्यावहारिक जीवन को उन्नत बनाने हेतु तथा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शुद्ध ताजे और निर्दोष भोजन की उपयोगिता स्वास्थ्य विज्ञान द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार की गई है। मानव-जीवन एवं मानव शरीर को स्वस्थ, सुन्दर व नीरोग रखने के लिए तथा आयु पर्यन्त शरीर की रक्षा के लिए निर्दोष, परिमित, सन्तुलित एवं सात्त्विक आहार ही सेवनीय होता है। आहार में कोई भी वस्तु ऐसी न हो जो स्वास्थ्य के लिए अहितकर अथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोगोत्पादक हो। अतः सदैव शुद्ध और ताजा भोजन ही हितकर होता है। आहार सम्बन्धी विधि-विधान के अनुसार उचित समय पर भोजन करने का बड़ा महत्व है। जो लोग समय पर भोजन नहीं करते वे अक्सर आहार एवं उदर सम्बन्धी व्याधियों से पीड़ित रहते हैं। आहार (भोजन) के समय के विषय में जैनधर्म का दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह तो निर्देशित नहीं किया गया है कि मनुष्य को भोजन किस समय और कितने बजे तक कर लेना चाहिए? किन्तु उसकी मान्यता एवं दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य को सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। इसका धार्मिक महत्व तो यह है ही कि रात्रि काल में भोजन करने से अनेक जीवों की हिंसा होती है, किन्तु इसका वैज्ञानिक महत्व एवं आधार यह है कि हमारे आसपास के वातावरण में अनेक ऐसे सूक्ष्म जीवाणु विद्यमान रहते हैं जो दिन में सूर्य की किरणों से नष्ट हो जाते हैं। रात्रि में सूर्य किरणों के अभाव में वे सूक्ष्म जीवाणु विद्यमान रहते हैं और वे हमारे भोजन को दूषित, मलिन व विषमय कर देते हैं। वे भोजन के माध्यम से हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर शरीर में विकृति उत्पन्न कर देते हैं। दूसरी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वास्थ्य विज्ञान एवं आहार पाचन-सम्बन्धी नियमानुसार हम जो आहार ग्रहण करते हैं वह मुख से गले के मार्ग द्वारा सर्वप्रथम आमाशय में पहुँचता है; जहाँ उसकी वास्तविक परिपाक क्रिया प्रारम्भ होती है। परिपाक हेतु वह आहार आमाशय में लगभग चार घंटे तक अवस्थित रहता है। उसके बाद ही वह आमाशय से नीचे क्षुद्रान्त्र में पहुँचता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जब तक भोजन आमाशय में रहता है तब तक मनुष्य को जाग्रत एवं क्रियाशील रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य की जाग्रत एवं क्रियाशील अवस्था में ही आमाशय की क्रिया पूर्णतः संचालित रहती है। मनुष्य की सुषुप्त अवस्था में आमाशय की क्रिया मन्द हो जाती है जिससे भुक्त आहार के पाचन में बाधा एवं विलम्ब होता है। अतः यह आवश्यक है कि मनुष्य को अपने रात्रिकालीन शयन से लगभग ४-५ घण्टे पूर्व ही भोजन कर लेना चाहिए, ताकि उसके शयन करने के समय तक उसके भुक्त आहार का विधिवत् सम्यक् पाक हो जावे। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को सायंकाल ६ बजे या उससे कुछ पूर्व ही भोजन कर लेना चाहिए। क्योंकि मनुष्य के शयन का समय सामान्यतः रात्रि को १० बजे या उसके आसपास होता है। अतः जैन-दर्शन का यह दृष्टिकोण कितना महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार लिए हुए है कि मनुष्य को सूर्यास्त के पूर्व ही भोजन कर लेना चाहिए।

इसी प्रकार जब वह सायंकाल ६ बजे या उसके आसपास भोजन करता है तो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार दो भोजन कालों का अन्तर सामान्यतः न्यूनातिन्यून आठ घण्टे का होना चाहिए। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जो व्यक्ति सायंकाल ६ बजे भोजन करना चाहता है तो उसे आवश्यक रूप से प्रातःकाल १० बजे या उसके आसपास भोजन कर लेना चाहिए। जो व्यक्ति प्रातः १० बजे भोजन करता है वह स्वाभाविक रूप से सायंकाल ६ बजे तक बुभुक्षित हो जायगा। अतः स्वास्थ्य के नियमों में ढला हुआ और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरने वाला जैनधर्म के द्वारा प्रतिपादित आहार सम्बन्धी नियम न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य का विकास करने वाला है, अपितु उसके स्वास्थ्य की रक्षा करता हुआ मानव शरीर को नीरोग बनाने वाला और उसे दीर्घायुष्य प्रदान करने वाला है।

रात्रिकालीन भोजन के निषेध के सम्बन्ध में एक यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कहीं भी यह उल्लेख नहीं मिलता है कि किसी भी रोगी को रात्रिकाल में उसके पथ्य की व्यवस्था की गई हो। दिन में ही रोगी को पथ्य देने की व्यवस्था की जाती है। प्रायः देखा गया है कि अस्पतालों में भी रोगियों को जो भोजन दिया जाता है वह प्रातःकाल और सायंकाल के हिसाब से दो समय ही दिया जाता है। अर्थात् रात्रि को भोजन नहीं दिया जाता। आहार सम्बन्धी नियम की यह समानता निश्चय ही जैनधर्म की आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को एक महत्वपूर्ण देन है। प्रकृति के नियमानुसार मनुष्य को उसके जीवन सम्बन्धी आचरण का निर्देश कर उसके परिपालन हेतु उसे प्रेरित करना जैनधर्म की मौलिक विशेषता है।

आहार सेवन के क्रम में शुद्ध एवं सात्विक आहार के सेवन को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रकार का आहार शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा में तो सहायक है ही, इससे मानसिक विचारों (परिणामों) की विशुद्धता भी होती है। दूषित, मलिन एवं तामसिक आहार स्वास्थ्य के लिए अहितकारी और मानसिक विकार उत्पन्न करने वाला होता है। कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि आहार के कारण मनुष्य शारीरिक रूप से स्वस्थ होता हुआ भी मानसिक रूप से अस्वस्थ होता है और जब तक उसके आहार में समुचित परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक उसके मानसिक विकार का उपशमन भी नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धूम्रपान एवं मद्यपान को आधुनिक युवा सभ्यता का प्रमुख अंग माना जाता है। यद्यपि किसी ग्रन्थ में इसके सेवन का विधि-विधान या स्पष्ट निर्देश उल्लिखित नहीं है, तथापि तथाकथित सभ्य समाज का वर्ग-विशेष इसे भी जीवन का आवश्यक अंग मानता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं अनुसन्धानकर्ता अनेक वैज्ञानिकों ने धूम्रपान व मद्यपान को एक स्वर से स्वास्थ्य के लिए हानिकर तथा जीवन व समाज को खोखला करने वाला बतलाया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान किसी भी व्यक्ति को इनके सेवन की प्रेरणा या सलाह नहीं देता है। क्योंकि शारीरिक व मानसिक दोनों दृष्टि से ये दोनों मानव स्वास्थ्य के शत्रु हैं। इसी भाँति जैनधर्म ने भी धूम्रपान का प्रबल निषेध किया है। इस सम्बन्ध में जैनधर्म का अत्यन्त विशाल दृष्टिकोण है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से तो इनका सेवन व्यर्थ है ही, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भी ये दोनों नितान्त हेय हैं। उपर्युक्त दोनों व्यसन नैतिक दृष्टि से मनुष्य का कितना अधःपतन कर देते हैं इसके अनेक उदाहरण वर्तमान समाज में आए दिन देखने को मिलते हैं। व्यसनरत किसी भी व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक वह इनका पूर्णतः परित्याग नहीं कर देता। जैनधर्म की दृष्टि से धूम्रपान एवं मद्यपान का सेवन जघन्य पाप तो है ही, यह एक ऐसा दुर्व्यसन है जो मनुष्य की आत्मा को अधःपतन की ओर ले जाता है। अतः शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से इन व्यसनों का त्याग आवश्यक है। इस सन्दर्भ में आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों की यह खोज महत्वपूर्ण है कि धूम्रपान का सतत सेवन कैंसर व्याधि की उत्पत्ति का कारण है। इसी प्रकार मद्यपान भी अनेक शारीरिक एवं मानसिक विकारों के साथ अनेक व्याधियों को उत्पन्न करता है। मद्यपान तत्काल हृदय को प्रभावित कर तामस भाव उत्पन्न करता है।

जैनधर्म में मनुष्य के आचरण की शुद्धता को विशेष महत्व दिया गया है। जब तक मनुष्य अपने आचरण को शुद्ध नहीं बनाता तब तक उसका शारीरिक विकास महत्वहीन एवं अनुपयोगी है। मनुष्य के आचरण का पर्याप्त प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। विपरीत आचरण या अशुद्ध आचरण मानव स्वास्थ्य को उसी प्रकार प्रभावित करता है जिस प्रकार उसका आहार-विहार। आचरण से अभिप्राय यहाँ दोनों प्रकार के आचरण से है—शारीरिक और मानसिक शारीरिक आचरण शरीर को और मानसिक आचरण मन को प्रभावित करता ही है, साथ ही शारीरिक आचरण मन को और मानसिक आचरण शरीर को भी प्रभावित करता है। इन दोनों आचरणों से मनुष्य की आत्मशक्ति भी निश्चित रूप से प्रभावित होती है। क्योंकि आचरण की शुद्धता आत्मशक्ति को बढ़ाने वाली और आचरण की अशुद्धता आत्मशक्ति का ह्रास करने वाली होती है। इसका स्पष्ट प्रभाव मुनिजन, योगी, उत्तम साधु और संन्यासियों में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे गृहस्थ श्रावकों में भी आत्मशक्ति की वृद्धि का प्रभाव दृष्टिगत हुआ है जिन्होंने अपने जीवन में आचरण की शुद्धता को विशेष महत्व दिया। ऐसे सन्त पुरुषों में महान् आध्यात्मिक सन्त पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी आदि तथा गृहस्थ जीवनयापन करने वालों में महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, गुरु गोपालदास जी वरैया, पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आत्मशक्ति या आध्यात्मिक प्रभाव के सम्बन्ध में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भौतिकवाद से प्रेरित होने के कारण यद्यपि स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है, किन्तु वह परोक्ष रूप से इसका समर्थन अवश्य करता है—यह एक तथ्य है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि दीर्घकाल से रुग्ण और जर्जरित देह वाले व्यक्ति के शरीर में ऐसी कोई शक्ति विशेष अवश्य रहती है जो उसके जीवन को धारण करती है और उसे जीवित रहने के लिए सतत रूप से प्रेरित करती रहती है। मानव शरीर की अन्तर्निहित यह शक्ति-विशेष मनुष्य को वह दृढ़ आधार प्रदान करती है जिससे शारीरिक रूप से क्षीण व्यक्ति को भी बल मिलता है। कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का मनोबल अत्यन्त ऊँचा है। इस मनोबल का आधार मनुष्य की अन्तर्निहित आत्म-शक्ति ही है। अतः चाहे इसे मनुष्य का नैतिक बल कहा जाय, चाहे इसे मनोबल कहा जाय, चाहे इसे आत्म-शक्ति या आध्यात्मिक शक्ति कहा जाय सब एक ही है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भले ही भौतिकवाद से प्रेरित हो, वह मनुष्य को विपरीत आचरण या कदाचरणकी प्रेरणा कदापि नहीं दे सकता। वह नहीं कहता कि मनुष्य असत्य का आचरण करे, वह नहीं कहता कि स्त्री प्रसंग आदि विषयों में अधिकतापूर्वक रमण करता हुआ मनुष्य उसके कुप्रभाव से अपने स्वास्थ्य का ह्रास करे या परस्त्रीगमन आदि कुआचरण करे। जिन वस्तुओं (गांजा, भांग, अफीम आदि) के सेवन से मानव स्वास्थ्य प्रभावित होता है, उनके सेवन का निर्देश आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में नहीं है। मनुष्य में पाशविक वृत्ति का उद्भव करने वाले आहार का निषेध आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी किया है। यही आचरण की शुद्धता है। जैनधर्म में इन बातों के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी विशेष जोर दिया गया है। इस प्रकार मौलिक रूप से भिन्न होते हुए भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अनेक विषयों में जैनधर्म के निकट है। ☆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org